श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

सा विद्या या विमुक्तये

प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास ४

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

सूत्र - विधि और रहस्य

-: इरियावही (इर्यापथिकी) सूत्र :-

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्....!
इरियावहियं पडिक्कमामि....? इच्छं
इच्छामि पडिक्कमिउं १
इरियावहियाओ विराहणाये २
गमणागमणे ३
पाण-क्कमणे, बीय - क्कमणे, हरिय - क्कमणे,
ओसाउतिंग, पणग-दग मट्टी - मक्कडा,
संताणा - संकमणे ४

जे मे जीवा विराहिया ५
एगिंदिया, बे-इंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया ६
अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाईया, संघट्टिया,
परियाविया, किलामिया, उद्‌विया, ठाणाओ ठाणं
संकामिया, जिवीयाओ ववरोविया
तस्स मिच्छामिदुक्कडं ७

शब्दार्थ

इच्छाकारेण : स्वेच्छा से (स्वईच्छासे)
संदिसह : आज्ञा आपो....!
भगवन् : हे भगवान ! हे पूज्य
इरियावहियं : जाने आने की क्रिया
पडिक्कमामि : मैं पीछे आता हूं
इच्छं : अनुसार है
इच्छामि : मैं चाहता हूँ
पडिक्कमिउ : पीछे हटने, मुक्त होने
इरियावहियाअे : जाते आते हुइ
विराहणाअे : विराधना से
गमणा - गमणे : जाते आते
पाणक्कमणे : प्राणीओं को कुचलना
प्राणी कुचले गये हो
बीय - क्कमणे : बीज कुचलते
हरिय - क्कमणे : हरी वनस्पति कुचलते
ओस : ओस
उतिंग : चींटीओं के घर
पणग : पाँच वर्ण की काई (सेवाल)
दग-मट्टी : कच्चा पानी-मिट्टी याने कीचड़
मक्कडा-संताणा : मकडी के जाले
संकमणे : पैरों से कुचलते
जे मे : जो कोई मुझसे
जीवा : जीव
विराहिया : विराधना हुई हो, दुःख पाये हो
एगेंदिया : एक इंद्रिय वाले जीव
बेइंदिया - दो इंद्रिय वाले जीव
तेइंदिया : तीन इंद्रिय वाले जीव
चउरिंदिया : चार इंद्रिय वाले जीव
पंचिदिया : पाँच इंद्रिय वाले जीव
अभिहया : लात मारी हों.
वत्तिया : धूल से ढंके हो
लेसिया : जमीन के साथ घिसे
संघाईया : आपस में एक दूसरे के शरीर मिलाये हों
संघट्टिया : थोडा स्पर्श कराया हो
परियाविया : दुःख पहुंचाया हो
किलामिया : खेद पहुंचाया हो
उद्‌विया : त्रास पहुंचाया हो, डराया हो
ठाणाओ ठाणं : एक स्थान से दूसरे स्थान पर
संकामिया : रखे हों, फिराये हों
जीवियाओ : जीवन से
ववरोविया : अलग किये हों, मार डाले हों
तस्स : उसका
मिच्छामि : मिथ्या हो - निष्कलहो मेरा
दुक्कडं : पाप

अर्थ :- हे पूज्य ... ! स्व इच्छा से मुझे आज्ञा दो कि मैं जाने आने की क्रिया से लगे पाप से पीछे हटुं । (यहाँ गुरु कहें - ''पडिक्कमेह'' तू पाप से पीछे हट । तब शिष्य कहे) आपकी आज्ञा अनुसार मैं पाप से पीछे हटना - मुक्त होना चाहता हुं...१

जाने आने के मार्ग में हुई विराधना से....२. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने आने में...३. प्राणी कुचलते, बीज कुचलते, हरी वनस्पति कुचलते ओस तथा चींटीओं के घर, पाँच प्रकार की काई (सेवाल) और कच्चा पानी और मिट्टी (दोनों के संयुक्त अर्थ में कीचड) तथा मकडी के जाल उन्हे पैरोंतले कुचलते, उस पर से चलकर जाते....४. जो कोई भी प्राणी मुझसे विराधे गये हों, मुझसे दुःख पायें हों....५. पृथ्वी, पानी, अग्नि, पवन और वनस्पति वगैरह एक इंद्रिय वाले जीव, शंख, कोडी, कृमि, अलसिया वगैरह दो इंद्रिय वालेजीव चींटी, मंकोडा, इल्ली, खटमल, कुंथुआ वगैरह तीन इंद्रिय वाले जीव मक्खी, भ्रमर, डांस, मच्छर, बिच्छु वगैरह चार इंद्रिय वाले जीव, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी वगैरह, पाँच इंद्रियवाले जीव .....६. लात मारी हो, धूल से ढांके हो, जमीन से घीसे हों, आपस में एक दूसरे के शरीर मिलायें हों, थोडा स्पर्श कराया हो, दुःख पहुंचाया हों, खेद पहुंचाया हो, त्रास पहुंचाया हो, एक स्थान से दुसरे स्थान पर रखा हो, जीवन से अलग किया हो - मार डाला हो, वो मेरा पापाचरण मिथ्या हो - निष्फल हो ।

इस सूत्र से जाने आने कि क्रिया करते जीवों की जो विराधना हुई हो उसका प्रतिक्रमण किया जाता है । इससे सामायिक, प्रतिक्रमण, देववंदन, व्रतोच्चारादि प्रसंग पर इस सूत्र का उपयोग करते हैं । छोटी से छोटी जीव विराधना को दुष्कृत समझ कर उसके लिये दिलगीर होना यह इस सूत्र का प्रधान सूर है । ''मिच्छामि-दुक्कडं'' ये तीन पद प्रतिक्रमण का बीज माना जाता है ।

इरियावही के १८२४१२० भेदों से (भांगा) **मिच्छा मि दुक्कडं** दिया जाता है । वे निम्न प्रकार से है -

जीवों के भेद ५६३ हैं, उन्हे **अभिहया** पद से **जीवियाओ ववरोविया** पद तक के दस पद से गुणाकार करना, उसे राग, द्वेष इन दो से गुणाकार करना, उसे करना करवाना और अनुमोदना करना इन तीन से गुणाकार करना, उसे मन-वचन-काया इन तीन योग से गुणाकार करना, उसे भूत-वर्तमान-भविष्य इन तीन काल से गुणाकार करना, उसे अरिहंत, सिद्ध, साधु, देव, गुरु और आत्मा इन छः साक्षी से गुणाकार करना, इस तरह उपरोक्त भेद होते हैं ।

तस्स (उत्तरीकरण) सूत्र

तस्स उत्तरीकरणेणं पायच्छित करणेणं,
विसोही करणेणं विसल्ली करणेणं,
पावाणं कम्माणं निग्घायण ठाओ ठामि काउस्सग्गं

-: शब्दार्थ :-

तस्स : उनकी
उत्तरी : फिर से शुद्धि
करणेणं : करने के लिये
पायच्छित : प्रायश्चित - पाप का छेदन
विसोही : विशुद्धि - वशिष शुद्धि
विसल्ली : शल्य रहित

पावाणं : पाप
कम्माणं : कर्मो का
निग्घायणठाओ : नाश करने के लिये
ठामि : मैं करता हुं
काउस्सग्गं : काया का उत्सर्ग (शरीर के व्यापार का त्याग)

अर्थः उनकी (उपर के सूत्र में लगे पाप संबंधी) फिर से शुद्धि करने के लिये प्रायश्चित - पाप का छेदन करने के लिये, आत्मा को ज्यादा शुद्ध करने के लिये शल्य रहित करने के लिये, पाप कर्मो का नाश करने के लिये, मैं कायोत्सर्ग शरीर के व्यापार का त्याग करता हूँ। इरियावही के प्रतिक्रमण से सामान्य शुद्धि होती है। काउस्सग से विशेष शुद्धि होती है, इसलिये विशेष शुद्धि के लिये यह सूत्र बोल कर काउस्सग्ग करने का निर्णय किया जाता है।

अन्नत्थ (कायोत्सर्ग) सूत्र

अन्नत्थ ऊससिअेणं, नीससिअेणं, खासिएणं,
छीअेणं, जंभाईअेणं, उडडुअेणं, वाय-निसग्गेणं,
भमलीये पित्तमुच्छाअे १
सुहुमेहिं अंग संचालेहिं, सहुमेहिं खेल संचालेहिं
सुहुमेहिं दिठ्ठि संचालेहिं २
एव माई एहिं आगारेहिं, अभग्गो अविराहिओ,
हुज्जमे काउस्सग्गो ३
जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं, न पारेमि ४
ताव कायं ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि ५

-ः शब्दार्थ ः-

अन्नत्थ ः इसके सिवाय दूसरे
उससिअेणं ः ऊंचा श्वास लेने से
नीससिअेणं ः श्वास नीचा छोडने से
खासिअेणं ः खांसी आने से
छीअेणं ः छींक आने से
जंभाइअेणं ः बगासा आने से
उडडुअेणं ः डकार आने से
वायनिसग्गेणं ः पवन छूटने से
भमलीअे - चक्कर आने से
पित्तमुच्छाअे - पित्त प्रकोप से, मुर्च्छा आने से
सुहुमेहिं ः सक्ष्म रुप से
अंग - संचालेहिं ः शरीर हिलने से
खेल - संचालेहिं ः कफ - थूंक निगलने से
दिठ्ठि - संचालेहि ः दृष्टि घुमाने से
अेवमाईअेहिं - यह वगैरह (इत्यादि)
आगारे हिं ः आगारों से
अभग्गो - भंग नहीं ऐसा
अविराहिओ - अविराधित
हुज्ज ः हो
मे ः मेरा
काउस्सग्गो ः कायोत्सर्ग
जाव ः जहाँ तक
अरिहताणं - अरिहंत
भगवंताणं - भगवान के
नमुक्कारेणं ः नमस्कार से
न पारेमि ः पूर्ण नहिं
ताव ः वहाँ तक
कायं ः शरीर को
ठाणेणं ः स्थान स
मोणेणं ः मौन से
झाणेणं ः ध्यान से
अप्पाणं ः मेरी काया को, शरीर के व्यापार को
वोसिरामि ः वोसिराता हुं, त्याग देता हूं।

अर्थ : दूसरा दूसरे नीचे के अपवाद के अलावा ऊँचा श्वास लेने से श्वास नीचे छोडने से, खांसी आने से, छींक आने से, बगासा आनेसे, डकार आने से, पवन छूटने से, चक्कर आने से, पित्त के प्रकोप से मूर्च्छा आने से. १

सूक्ष्म रुप से शरीर के अंगो का स्फूरण होने से, सूक्ष्म रुप से शरीर के अंदर कफ का संचार होने से, सूक्ष्म रुप से आंख की दृष्टि फरकने से. २

इत्यादि आगारों से मेरा कायोत्सर्ग भंग न हो या विराधना हो नहीं ऐसी समझ के साथ कायोत्सर्ग हो। (इत्यादि शब्द से यहाँ दूसरे चार प्रकार के आगार ग्रहण करने की परंपरा है जो नीचे अनुसार हैं) १. अग्नि (आग) फैलकर आकर स्पर्श करे। २) शरीर का छेदन अथवा पंचेन्द्रिय का वध सामने होता हो। ३) चोर या राजा की तरफ से भय या विघ्न हो। ४) सर्प दंश का कारण हो। इन चार कारणोंसे दूसरे स्थान पर जाना पडे तो भी कायोत्सर्ग भंग नहीं होता।

जहाँ तक अरिहंत भगवंत को नमस्कार पूर्वक अर्थात ''**नमो अरिहंताणं**'' पद से पूर्ण करु नहीं. ४

वहाँ तक शरीर को, स्थिर खडे रहकर, वाणी से मौन धारण करके, मन को ध्यान से स्थिर करके, मेरी काया के ममत्व को संपूर्ण त्याग देता हूँ. ५

अन्नत्थ सूत्र में कायोत्सर्ग के आगार तथा समय, स्वरुप और प्रतिज्ञा बताई गई है। '**अन्नत्थ**' से '**हुज्ज मे काउस्सग्गो**' तक आगार हैं। '**जाव अरिहंताणं**' से '**न पारेमि ताव**' तक समय हैं। '**काय**' से '**झाणेणं**' तक स्वरुप है और '**अप्पाणं वोसिरामि**' इन पदो में कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा है। इस सूत्र से आगार पूर्वक काउस्सग्ग किया जाता है।

---

१. काउस्सग्ग में लगते १९ दोष इस प्रकार है :-

१. घोडे के समान एक पैर उँचा रखे, टेढ़ा रखे **घोटक दोष** २. जिस प्रकार पवन से बेल हिलती है उस प्रकार शरीर हिलाये वह **लतादोष** ३. खंबे वगैरह को टेका देकर खडा रहे वह **स्तंभादिदोष** ४. उपर मजला हो उस पर मस्तक टिका कर रहे वह **माल दोष** ५. गाडी के धुरे की तरह अंगुठा और एडी मिलाकर पैर रखे वो **उधि दोष** ६. निगड (बेडी) में डाले गये पैर की तरह पैर फैला कर रखे वह **निगड दोष.** ७. नग्न भिलनी की तरह गुह्य स्थान पर हाथ रखे वह **शबरी दोष** ८. घोडे के चोकडे की तरह हाथ रजोहरणयुक्त आगे रखे वह **खलिण दोष** ९. नव परिणीत वधू की तरह सिरनीचा रखे वह **वधु दोष** १०. नाभि के उपर या घुटने से नीचे लम्बा वस्त्र रखे वह **लंबोतर दोष** ११. डांस, मच्छर के भय से, अज्ञान से अथवा लज्जा से हृदय का आच्छादन करके स्त्री की तरह ढँक कर रखे वह **स्तन दोष** १२. शीत आदि के भय से साध्वी की तरह दोनो स्कंध (कंधे) ढँक कर रखे अर्थात समग्र शरीर आच्छादित रखे वह **संयति दोष** १३. कायोत्सर्ग की संख्या ऊँगली पर गिने तथा पलकें पटपटाये वह **भमुहंगली दोष** १४. कौओ की तरह आंखे घुमाये वह **वायस दोष** १५. पहने हुए कपडे प्रस्वेद से मलीन होने के भय से कोंठ की तरह छुपा कर रखे वह **कपित्थ दोष** १६. यक्षावेशित की तरह सिर हिलाना वह शिरःकंप दोष १७. गुंगे की तरह हुं हुं करे वह **मूकदोष** १८. आलावा गिनते शराबी की तरह बडबडाट करे वह **मदिरा दोष** १९. बंदर की तरह आसपास देखा करे, ओष्टपुट हिलाये वह **प्रेक्ष्य दोष**।

लोगस्स सूत्र

चतुर्विंशति -जिन - नामस्तव :

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे;
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली १.
उसभ मजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइंच;
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे २.
सुविहिं च पुष्फदंतं, सिअल-सिज्जंस, वासुपूज्जं च;
विमलमणं तं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ३.
कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे, मुणिसुव्वयं नमिजिणं च;
वंदामि रिठ्ठनेमिं पासं तह वद्धमाणं च ४.
अेवं मअे अभिथुआ, विहुयरयमला, पहीणजरमरणा,
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ५.
कित्तिय- वंदिय - महिया, जे ए लोगस्स उत्तमासिद्धा;
आरुग्ग-बोहि-लाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु ६.
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा;
सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ७.

-: शब्दार्थ :-

लोगस्स : लोक के
उज्जोअगरे : प्रकाश करने वाले
धम्म : धर्म रुपी
तित्थयरे : तीर्थ का स्थापना करने वाले
जिणे : जिनो को
अरिहंते : अरिहंतो को
कित्तइस्सं : (कीर्तन) भजुंगा
चउविसंपि केवली : चोवीस को और अन्य भी केवलज्ञानिओं को
उसभं : ऋषभदेव को
अजिअं : अजितनाथ को
च : और
वंदे : वंदन करता हूँ
संभवं : संभवनाथ को
अभिणंदणं : अभिनंदन स्वामी को
सुमइं : सुमति नाथ को
पउमप्पहं : पद्म प्रभु को
सुपासं : सुपार्श्वनाथ को
जिणं : जिन को
चंदप्पहं : चंद्र प्रभु को
वंदे : वंदन करता हूँ
सुविहिं : सुविधि नाथ को
पुष्फदंतं : पुष्पदंत को
सीअल : शीतल नाथ को
सिज्जंस : श्रेयांसनाथ को
वासुपुज्जं : वासुपुज्य स्वामी को
विमलं : विमलनाथ को
अणंत : अनंतनाथ को
जिणं : जिन को
धम्मं : धर्मनाथ को
संति : शातिनाथ को
वंदामि : वंदन करता हूँ
कुंथु : कुंथुनाथ को
अरं : अरनाथ को
मल्लिं : मल्लिनाथ को
वंदे : वंदन करता हूँ
मुणिसुव्वय : मुनिसुव्रतस्वामी को
नमिजिणं : नमिजिन को
वंदामि : वंदन करता हुँ
रिठ्ठनेमिं : अरिष्टनेमि को - नेमनाथ को

पासं : पार्श्वनाथ को	लोगस्स : लोक के
तह : तथा	उत्तमा : उत्तम
वध्दमाणं : वर्धमानस्वामी को, महावीर स्वामी को	सिद्धा : सिद्ध हुये
अेवं : तरह	आरुग्ग : आरोग्य - कर्म रोग रहितपना
मअे : मेरे द्वारा	बोहि : सम्यग् दशरन का - बोधिबीज का
अभिथुआ : (नाम पूर्वक) स्तवना किये गये	लाभं : लाभ
विहुय : दूर करनेवाले	समाहिवरं : श्रेष्ठ समाधि
रयमला : कर्मरुपी रज तथा मल को	उतमं : उत्तम सर्वोकृष्ट
पहीण : क्षय करनेवाले	दिंतु : दो
जरमरणा : बुढ़ापा और मृत्युको	चंदेसु : चंद्र से
चउवीसंपी : चोवीस भी	निम्मलयरा : अधिक निर्मल
जिणवरा - जिनवरो - जिनोमें श्रेष्ठ	आइचेस्सु : सूर्यो से
तित्थयरा : तिर्थंकरों	अहियं : अधिक
मे : मेरे उपर	पयासयरा : प्रकाश करनेवाले
पसीयंतु : प्रसन्न हो	सागर वर : श्रेष्ठ समुद्र जैसे
कित्तिय : स्तवना किये गये	गंभीरा : गंभीर
वंदिय : वंदित (वंदना किये गये)	सिद्धा : सिध्द परमात्मा
महिया : पूजित	सिद्धि : सिद्धि
जे : जो	मम : मुझे
अे : इस	दिसंतु : दो

अर्थ :- तीनो लोक के प्रकाश करनेवालो को, धर्मरुपी तीर्थं की स्थापना करने वालों को, और राग द्वेष रुपी कर्मशत्रु को जीतने वाले जिनो को अरिहंतो को तथा अन्य भी केवलज्ञानीओं को भजुंगा...१

१. ऋषभदेव और २. अजितनाथ को वंदन करता हूँ ३. संभवनाथ को ४. अभिनंदन स्वामी को ५. सुमतिनाथ को ६. पद्मप्रभुको ७. सुपार्श्वनाथ को और रागद्वेष को जितने वाले ८. चंद्रप्रभस्वामी को वंदन करता हूँ...२.

९. सुविधिनाथ (अथवा उनका दूसरा नाम) पुष्पदंत को, १०. शीतलनाथ को ११. श्रेयांसनाथ को और १२. वासुपुज्य स्वामी को १३. विमलनाथ को १४. अनंतनाथ को और रागद्वेष को जीतने वाले १५. धर्मनाथ तथा १६. शांतिनाथ को वंदन करता हूँ....३.

१७. कुंथुनाथ को, १८ अमरनाथ को और १९ मल्लिनाथ को २० मुनिसुव्रत स्वामी को तथा २१ नमिनाथ को वंदन करता हूँ. २२ अरिष्टिनेमि को - नेमिनाथ को २३. पार्श्वनाथ को तथा २४. वर्धमान स्वामी को - महावीरस्वामी को वंदन करता हूँ....४.

इस प्रकार मेरे द्वारा नाम पूर्वक भजे गये, जिन्होने कर्मरुपी रज (धूल) और मल (मैल) दूर किया है ऐसे, तथा जन्म, जरा और मृत्यु का क्षय किया है ऐसे जिनो में श्रेष्ठ हैं ऐसे तीर्थंकरों मेरे उपर प्रसन्न हों....५

नामपूर्वक स्तवना किये गये, वंदना किये गये, पूजे गये, जो इस लोक में उत्तम श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं, वो आरोग्य और सम्यगदर्शन - बोधिबीज का लाभ तथा सर्वोत्कृष्ट समाधि प्रदान करें. ६.

चंद्रो से भी अधिक निर्मल, सूर्य से भी अधिक प्रकाश करनेवाले श्रेष्ठ सागर से भी अधिक गंभीर ऐसे हे सिध्दों..! मुझे सिद्धिपद मोक्ष दो....७

इस सूत्र से गुणगान पूर्वक वर्तमान चोविशी को वंदन करके उनकी प्रसन्नता मांगी है और उनके पास से बोधिलाभ, श्रेष्ठ समाधि और सिद्धि मांगी गई है।

❖❖❖❖❖❖

तीन खमासमण देकर योग मुद्रा में बैठना

इच्छाकारेण संदिसह भगवन ! चैत्यवंदन करुंजी ?

।।अथ अशोकवृक्ष काव्यं ।।

अशोकवृक्ष सुरुपुष्पवृष्टि र्दिव्यध्वनिश्र्चामरमासनं च;
भामंडलं दुंदुभिरातपत्रं, सत्प्रतिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ।

इस श्लोक में अरिहंत परमात्मा के आठ प्रातिहार्य बतायें हैं। जिनका वर्णन अरिहंत परमात्मा के बारह गुणों के वर्णन से जान लेना।

अथवा

सकल कुशल वल्लि पुष्करावर्त मेघो,
दुरित तिमिर भानु : कल्पवृक्षोपमान;
भवजलनिधि पोत : सर्व संपति हेतुः,
स भवतु सततं वः श्रेयसे शांतिनाथ - श्रेयसे पार्श्वनाथः.

अर्थ :- सकल कुशल की बेल (वेलडी), पुष्करावर्त मेघ, दुरित के अधंकार को दूर करने वाले सूर्य, कल्पवृक्ष समान, भवसागर में जहाज तथा सर्व संपत्ति के हेतु समान श्री शांतिनाथ भ. तथा श्री पार्श्वनाथ भ. हमारा श्रेय - कल्याण करने वाले हों।

श्रावक किसे कहें ?

(श्रावक के २१ गुण)

चाँद बिना रात....

विनय बिना विद्या....

धन बिना जीवन....

शक्कर बिना मिष्टान्न....

नमक बिना भोजन....

जैसे आनंदप्रद होता नहीं वैसेही धर्म बिना मानवजीवन अशोभनीय है और जीवन में शांति या प्रसन्नता भी दे नहीं सकता।

अनादि काल से चलते जन्म-मरण के संसारचक्र में क्या हमें धर्म मिलाही नहीं होगा ? नहीं-नहीं ऐसा तो संभावित ही नहीं है। शास्त्र कहते है हमने ओघे और महुपती के मेरु पर्वत जितने ढेर किये हैं। तो क्या हमें धर्म मिला, पर फला नहीं ? हाँ हाँ ऐसाही कुछ होगा।

क्यों नहीं फला ?

''जह चिंतामणिरयणं,
सुलहं न हु होई तुच्छ विहवाणं।
गुण विभववज्जियाणं,
जियाण तह धम्मरयणं पि।।

जैसे अल्प धनवाले को चिंतामणी रत्न सुलभ नहीं है वैसे ही गुणरुपी धन से रहित जीवों को धर्मरुपी रत्न भी सुलभ नहीं है।

जो अल्प वैभववाला जीव हो वह हीरा बजार में चक्कर लगाये, अलंकार देखके आये पर हीरा बजार में उसका चक्कर निष्फल है क्योंकी वह वहाँ कुछ भी खरीद नहीं सकता, ला नहीं सकता। उसी तरह गुणवैभव हीन व्यक्ति धर्म स्थानों में जाकर भले आये, मंदीर - उपाश्रय के चक्कर जरुर लगा के आये, परंतु वह धर्म को पा नहीं सकता।

चिंतामणी रत्न को पाने के लिये धनवैभव की आवश्यकता है, जबकि धर्मरत्न को प्राप्त करने के लिये गुणवैभव की आवश्यकता है।

यही कारण है कि अनादि कालसे धर्मस्थानों में जाते हुए...खमासणा, कायोत्सर्ग करने के बाद भी हमे धर्मरत्न की प्राप्ति नहीं हुई, फलस्वरुप भवभव के फेरे नहीं टले।

इस धर्मरत्न को पाने के लिए शास्त्रकार इक्कीस गुणोंका वैभव बताते है। आइये हम खुद को जाँचे हम खुद कैसे वैभवके स्वामी है ?

अरिहंत के १२ गुण कहे है....

सिद्ध के ८ गुण बताये है....

आचार्य के ३६ गुण बताये है....

उपाध्याय के २५ गुण वर्णित है....

साधु के २७ गुण दर्शाये है.....

परंतु इन सब गुणों के नींव में धर्मरत्न को प्राप्त करने की योग्यता देनेवाले श्रावक के २१ गुण अत्यंत आवश्यक है। इन इक्कीस गुणोंसे युक्त हो वही धर्मरत्न के योग्य है। लायक है... वे गुण इस तरह के है....

१) अक्षुद्र :- याने क्षुद्रता रहित होते है।

२) रुपवान : याने प्रशस्त रुपवाला हो।

३) सौम्य प्रकृतिवाला : याने प्रशांत चित्तवाला होने से सुंदर स्वभाव वाला हो।

४) लोकप्रिय : याने सदाचार का आचरण करने वाला होने से लोगों को प्रिय हो।

५) अक्रुर : याने अन्यों के दोष देखने के वृत्तिवाला न हो।

६) पापभीरु : याने आलोक और परलोक में प्राप्त होनेवाले फल से भयाक्रान्त हो।

७) अशठ : याने सच्ची क्रिया विधिपूर्वक करने से शठता रहित हो।

८) दाक्षिण्यतावाला : याने किसी की भी प्रार्थना का भंग न करनेवाला।

९) लज्जाशील : याने अयोग्य कार्य करने में लज्जा अनुभव करनेवाला हो।

१०) दयालू : याने चित्त दयासे भरपूर हो।

११) मध्यस्थ एवं सौम्य दृष्टीवाला : याने यथार्थ वस्तु तत्त्व देखनेवाला।

१२) गुणोंका रागी : याने गुणों के विषय में बहुमान वाला।

१३) सत्कथी : याने दुष्ट आचरण करना, सुनना या कहना इस बारे में अरुचिवाला हो।

१४) सुपक्षयुक्त : धर्म में विरोध न करनेवाले ऐसे बंधु एवं परिवार युक्त हो।

१५) दीर्घदृष्टिवाला : याने बुद्धिमान होने से विचार कर जिसका परिणाम सुंदर हो ऐसे कार्य को करनेवाला हो।

१६) विशेषज्ञ : याने सत् और असत् को जाननेवाला हो।

१७) वृद्धानुयोग : याने वृद्ध परिपक्कव बुद्धिवाले को अनुसरण करनेवाला हो।

१८) विनयवान : याने गुरुजनों की भक्ति करनेवाला हो।

१९) कृतज्ञ : याने किसी ने आलोक परलोक संबंधी थोडा भी उपकार किया हो तो उसे जाननेवाला हो।

२०) परहितार्थकारी : याने पर के हित के कार्य करनेवाला हो।

२१) लब्धलक्ष्य : याने लक्ष्य करने योग्य धर्मक्रिया का व्यवहार प्राप्त किया है ऐसा हो।

ऊपरोक्त गुण जीवन में आते है तब जीव का गुणवैभव पुर बहार में खिलता है। ऐसा जीव धर्म करनेके लिये उद्यमशील बनता है, धर्म प्राप्त करता है। धर्म ऐसे जीवों के जीवनमें सहजतासे बुन जाता है। ऐसे पुण्यवंत महानुभावी के जीवन धन्यता के पात्र है। ऐसे जीवन के स्वामी बनने के लिये केवल जन्म श्रावक या क्रिया श्रावक बनकर नहीं चलेगा, परंतु गुण-श्रावक बनने के लिये प्रबल पुरुषार्थ करनाही पडेगा।

१. अक्षुद्र

खुद्दो त्ति अंगभीरो,
उत्ताणइ न साहअे धम्मं।
सपरोवयार सत्तो,
अतखुद्दो तेण इह जोग्गो ।।

क्षुद्र याने गंभीरता रहित, वह बुद्धि की निपुणता रहित है , अतः धर्म साध नहीं सकता। फलस्वरुप अक्षुद्र याने स्वपर का उपकार करनेमें शक्तिमान जो होगा वह यहाँ योग्य है।

क्षुद्र शब्द के अनेक अर्थ है। क्षुद्र याने तुच्छ, क्षुद्र याने क्रुर, क्षुद्र याने दरिद्री, क्षुद्र याने लघु (छोटा) वगैरह। यहाँ पर क्षुद्र याने तुच्छ होकर अगंभीर ऐसा अर्थ लेना है। अगंभीर व्यक्ति ानिपुण बुद्धिवाला होता है। जहाँ बुद्धि की निपुणता न हो वहाँ धर्म साधना किस तरह संभावित है ? अर्थात् संभवही नहीं है। क्यों कि धर्म के तत्त्व को सदा सूक्ष्म बुद्धिवाले ही जान और समझ सकते हैं। जो जीवों के सामान्य व्यवहारिक जीवन में भी सूक्ष्म बुद्धि के दर्शन न होते हो तो वह धर्मरत्न को कैसे पा सकता है।

एक नगर में एक सेठ सेठानी रहते थे। सेठ को चार पुत्र और एक पुत्री थी। सेठ खुद को बहुत भाग्यशाली समझते थे। संसार सुख से व्यतीत होता था। पर सब बराबर चले तो ज्ञानी संसार को असार

क्यों कहते ?

सेठ के लडके बडे हुए न हुए और थोडीसी बिमारी में सेठाणी परलोक सिधार गये।

सेठ ने धीरे धीरे पुत्र एवं पुत्री की शादी की। सबको ठिकाने लगाया पर खुद सेठ वृद्धत्व एवं बीमारी के भोग बने। थोडे दिन तो सबने खुशी खुशी सेवा की पर बाद में निरुत्साही बनते गये। सेवा करते करते थक गये।

चारों पुत्रोंने मिलकर मिटींग ली। अब क्या करें ? अब कौन संभालेगा ? छोटा पुत्र कहने लगा ज्येष्ठ पुत्रने संभालना चाहिये, जेष्ठ पुत्र कहने लगा छोटे का कर्तव्य है संभालने का। बहुत सारे वादविवाद एवं झगडों के बाद नक्की किया गया कि सब ने बारी बारी एक एक महिना संभालना चाहिये। पर यहाँ एक प्रश्न सुलझा तो दुसरा खडा हुआ। अंग्रेजी महिनों में एक महिने ३० दिन तो दुसरे में ३१ दिन होते हैं सब ३० दिन रखे पर इस इकतीस वे दिन का क्या करें ?

तभी एक पुत्रवधू ने सुझाव दिया की बापू ने एक दिन का उपवास कर डालना चाहिये तो स्वास्थ भी अच्छा रहेगा।

ये सब चुपचाप सुन रही एवं देख रही पुत्री से रहा न गया, उसने कहा ''पिताजी ! चलो मेरे ससुर जी के साथ आपकी सेवा करने में मुझे आनंद आयेगा''।

और पिताजी लकडी के सहारे बेटी के साथ चल पडे।

जिस दुनिया में जीव ऐसी तुच्छ...हलकी मनोवृत्तिके स्वामी होते है, उनके पास धर्मरत्न की अपेक्षा क्या रखी जाय ? हम अनादि कालसे ऐसी तुच्छता के कारण अपने परोपकारी को भी पहचान नहीं पाते। उनके जीवन में शांति और प्रसन्नता ला नहीं सके तो परम परमात्मा के सूक्ष्म तत्त्वों को किस तरह समझ पायेंगे ?

तारक तीर्थंकर प्रभु को स्थूल क्रियाकांड विधिविधान समझने के लिये भी तुच्छ मनोवृत्ति और क्षुद्रता का त्याग करना ही पडेगा। तारक प्रभुका तारक तत्वज्ञान पाने के लिये खुद को उंचा उठानाही होगा। स्वयं के जीवन बगिया को आश्चर्यकारी गुणों से शृंगारित करनाही पडेगा। क्षुद्रता को हद्दपार कर अक्षुद्रता का स्वामी बनना ही पडेगा। गुणीजनों के गुणोंसे शोभायमान जीवन को देख प्रमुदित होना पडेगा। अपने जीवन बगिया में ऐसे गुणोंके पुष्प विकसित करने के लिये साधना का प्रारंभ करना पडेगा।

गुणी भरेला गुणीजन देखी,
हैयुं मारुं हर्ष धरे ;
अे संतोना चरणकमळमां,
मुज जीवन नुं अर्ध्य रहे।

२. श्रावक रुपवान हो

संपुन्नंगोवंगो, पंचिंदियसुंदरो सुसंघयणो।
होई पभवणहे उ खमोय तह रुववं धम्मं।।

संपूर्ण अंगोपांगवाला....
पाँचो इंद्रियवाला.....और
अच्छे संघयणवाला जो हो....
वह रुपवान कहा जाता है।

ऐसा पुरुष धर्म को शोभित कर सकता है एवं धर्म पालन में समर्थ होता है।

मनुष्य का शरीर अंगोपांग द्वारा बना हुआ होता है। मस्तक, छाती ,पेट, पीठ, दो हाथ, दो जंघा ये आठ अंग है। अंगुली वगैरे उपांग कहलाते है, और शेष अंगोपांग कहलाते है।

श्रावकका दुसरा गुण बताते हुए कहते है कि श्रावक रुपवान होना चाहिये। रुपवान याने क्या ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते है, जिसकी पाँचो इंद्रिय सुंदर हो अर्थात् वह विकल अंगवाला याने काणा, बहरा और गूँगा नही होना चाहिये।

जो रुपवान है वह शुभ संघयणवाला भी होना चाहिये । संघयण याने क्या ? इस प्रश्न के समाधान में कहते है - संघयण याने हड्डियों की मजबूत रचना अथवा शरीर की शक्ति । शास्त्रों में छः प्रकारके संघयण बताये है १) वज्र ऋषभ नाराच संघयण २) ऋषभ नाराच संघयण ३) नाराच संघयण ४) अर्ध नाराच संघयण ५) कीलिका एवं ६) सेवार्त संघयण ।

ऋषभ याने पाटा, वज्र याने किलीका अथवा खिला और नाराच याने मर्कट बंध....

जिस तरह बंदरिया का बच्चा माँ के पेटको चिपका हुआ रहता है, वैसेही दो हड्डियाँ आमने सामने हड्डियोंको चिपकी हुई होती है उसे मर्कट बंध कहते है ।

ऐसे रुपके भी दो प्रकार बताये है - १) सामान्य रुप एवं) अतिशय वाला रुप ।

अंगोपांग संपूर्ण हो वह सामान्य रुप और रुप के विषय में किसी भी देश काल या वयमें रहे हुए प्राणी को ''यह रुपवान है'' ऐसी लोगोंको प्रतीति उत्पन्न करे वही रुप ''अतिशयवंत'' रुप कहलाता है । अतिशय युक्त रुप तो तीर्थंकर परमात्मा का ही हो सकता है ।

रुपवान व्यक्तियोंको धर्म-पुण्य द्वाराही रुप की प्राप्ति होती है । ऐसी रुपवान व्यक्तियाँ जब धर्म की आराधना में आगे बढती है तब औरों को धर्म में आगे बढने के लिये प्रेरणादायी होते हैं । रुपवान को धर्म में आगे बढते हुए देखकर बहुत लोग उनके साथ जुड जाते है ।

नंदिषेण और हरिकेशी आदि धर्म पाकर अनेकोंको धर्म मार्ग में जोडनेवाले बने । ये नंदिषेण और हरिकेशी रुपवान नहीं थे तो फिर यह कैसे घटा ? नंदिषेण और हरिकेशी कुरुप थे परंतु सामान्य रुप उनके पास था । पाँचो इंद्रियोंसे परिपूर्ण थे ।

जहाँ इंद्रियोंकी परिपूर्णता न हो वहाँ धर्म स्वतंत्रता से संभवित नहीं है । जीव पराधीन बन जाता है । आँख न हो अथवा कमजोर दृष्टि हो तो जयणा का पालन नहीं होता. धर्मग्रंथों का अध्ययन, वाचन आदि नहीं हो सकता ।

श्रोतेन्द्रिय कमजोर हो तो परमात्मा की वाणी श्रवण नहीं कर सकते । सत्संग का सही लाभ नहीं ले सकते ।

गूँगा हो- बोलने की शक्ति न हो तो मन में उठी शंका दूसरे के पास अभिव्यक्त नही कर सकते, मन की बात अन्य को समझा नहीं सकते ।

पैर बराबर न हो तो जिनालय उपाश्रयादि में स्वेच्छासे जा नहीं सकते, धर्माराधनामें बाधा आयेगी ।

इसी तरह वृद्धावस्था में भी जब इंद्रियों में हीनता या कमजोरी आती है तब जीव धर्माराधना संपूर्ण रीतसे करनेमें समर्थ नहीं होता । याने जब तक इंद्रिय बराबर है तबतक सविशेष धर्माराधना कर लेने का पुरुषार्थ कर लेना चाहिये ।

प्रभु महावीर स्वामी की प्रथम प्रवर्तिनी साध्वीजी चंदनबाला रुपवान थी । गुणवान थी, उनके रुपसे और धर्म से अनेकों को धर्म में आगे बढने की प्रेरणा मिली । एक समय की राजकुमारी... ऐसी स्वरुपवान चंदनबाला इस सुखसामग्री भरपूर संसार का त्याग कर कष्टों से भरे संयम मार्ग पर बढी, इससे संसार निश्चित ही छोड ने जैसा है - और संयम लेने जैसा है, धर्म साधना कर मोक्ष प्राप्त करने जैसा है, ऐसी प्रतीती और अनुभूति अनेकों को हुई । फलतः अनेक जीव धर्म के और संयम के रसिक बन गये ।

हमारी पाँचो इंद्रिय सलामत है.... बराबर है तब तक धर्मसाधना कर लेनें जैसी है । इंद्रिय और देह कमजोर होने पर मन भी दुर्बल बन जाता है । मन दुर्बल होता है तो साधना आराधना के मनोरथों में कमी आ जाती है । कमजोर साधना जीव को प्रमादी बनाकर दुर्गति की ओर खींच ले जाती है ।

३) श्रावक सौम्य प्रकृतिवाला हो

''पवईसोम सहावो,
न पावकम्मे पवत्तई पायं ।
हजई सुह सेवणिज्जो,
पसमनिमितं परेसि पि '' ।।

श्रावक के तीसरे गुण को बताते हुए कहते हैं कि 'श्रावक सौम्य प्रकृतिवाला होता है।

जो स्वभावसे ही सौम्य प्रकृतिवाला है वह प्रायः पापमें प्रवर्तमान ही नहीं होता । पाप में न प्रवर्तने से वह सुख से सेवन करने योग्य होता हैं । ऐसा व्यक्ति अन्य लोगों के लिये उपशम का कारण बनता है ।

यह विश्व अलग अलग स्वभाववाले जीवों से भरा है । कहीं सौम्यता दिखती है.. कहीं उग्रता दिखती है।

कहीं कषायों की उपशांतता प्रवर्तती है, कहीं कषाय का प्रचंड उदय दिखाई देता है । धर्म को न समझने वाला जीव कर्मके अधीन बनकर आत्माको कर्म के और संसार के चक्र में फिराता रहता है । हम सब अनादि कालसे संसार चक्र में घूम रहे है । जीव जब धर्म को कुछ अंशों से समजने लगता है, तब धीरे धीरे अपने कषायोदय में जागृत जागृत बनकर उसे शांत करते जाता है । जैसे जैसे कषाय शांत होते जाते है वैसे वैसे जीव सौम्य प्रकृतिवाला बनता जाता है । ऐसा जीव पूर्व भवसे धर्म के संस्कार लेकर आया हुआ होने से ही धर्म करने की उत्तम शक्ति धारण करता है । पूर्वभव के धर्म के संस्कार उसे पाप में प्रवर्तने देते नहीं अतः उसे पाप का भय सतत होता है । ऐसे जीव पाप से दूर भागते रहते है । ऐसे जीव स्वयं सौम्य प्रकृतिवाले बनकर अन्यों को भी सौम्यता की ओर ले जानेवाले होते है । ऐसे जीवों के जीवन में होनेवाली धर्म आराधना अनुमोदना का निमित्त कारण बनता है।

तप कर क्रोध करनेवाले....

दान कर अहंकार करनेवाले....

वीतराग की पूजा कर माया कपट करनेवाले.....

सामायिक प्रतिक्रमण कर लोभ करनेवाले...

ऐसे जीव कभी भी सौम्यप्रकृति के स्वामी नहीं बन सकते । ऐसे जीवों से धर्मकी प्रशंसा और अनुमोदन तो जाने दो पर बहुतबार धर्म की निंदा होती है । श्रावक का जीवन सदा धर्म की निंदा हो ऐसे वर्तन से दूर होता है । वह तो सदा जयवंता जिन शासन की प्रभावना हो ऐसेही वर्तन का स्वामी होता है । अतः उसके जीवन में सौम्यप्रकृति की प्राप्ति अत्यंत आवश्यक बन जाती है ।

चंडरुद्राचार्य के पास उसी दिन के विवाहित युवक ने संयमधर्म स्वीकार किया, मश्करी मजाक में साधुका वेश मिल गया, परंतु जीव आराधक था, सौम्यप्रकृतिका साधक था, श्रावक जीवन का यह गुण संयम जीवनका साथी बना, अंधेरे में विहार करते हुए गुरु भगवंत को तकलिफ न हो इसलिये कंधे पर उठाया, फिरभी खुद के पैर अंधेरे में उंचे-नीचे पडते, गुरु को अशाता होने से, युवक के ताजा लोच हुए मस्तक पर वे दांडे से प्रहार करने लगे । खून की धारा बहने लगी, परंतु मुनिराज शांत है क्योंकि श्रावक जीवन से ही सौम्य प्रकृति के स्वामी थे । गुरु के लिये अशाता एवं आर्तध्यान का खुद निमित्त बने है, ऐसा सोचकर मनमें सतत पश्चाताप कर रहे हैं, जिससे धीरे धीरे क्षपक श्रेणी पर आरुढ होकर घाती कर्मोंका नाश कर, केवलज्ञान के स्वामी बनते हैं । गुरु भगवंत को शिष्य के केवलज्ञान का ख्याल आते ही पश्चाताप पूर्वक उन्हें खमाते हैं और स्वयं भी केवलज्ञान पाते हैं ।

ऐसे सौम्य प्रकृतिवाले जीव श्रावक जीवन में शांति फैलाते है और संयम जीवन में परंपरा से केवलज्ञान पाकर अन्य को भी केवलज्ञान तक पहुँचाते है ।

वर्तमान समय में घर घर में पैदा होता क्लेश का वातावरण सौम्य प्रकृतिके कमी की ओर निर्देश करता है । यदि हम सब के जीवन में यह गुण आ जाय तो परिवार में आनंद-मंगल का वातावरण बनेगा. स्वर्ग का धरतीपर अवतरण हो जायेगा ।

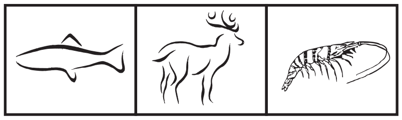

जीव-विचार

जयणा यही जीवन है ।

जयणा पालन के लिये जीव कहाँ कहाँ है ? उन्हें किस तरह से बचा सकते हैं यह जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है । श्रावक का जीवन एकेन्द्रिय जीवों पर आधारित है याने उनके उपयोग के बगैर नहीं चल सकता परंतु वहां सावधानी हो तो कम जीवों की विराधना से जीवन जी सकते है और ज्यादा से ज्यादा जीवों को अभयदान दे सकते हैं । ऐसे एकेन्द्रिय, पृथ्विकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पति काय वगैरह जीवों को जानने के पश्चात हम आगे बढते हैं ।

विश्व के चौगान में एकेन्द्रिय जीवों को छोड दें तो हमारे सामने विविध प्रकार के चलने-फिरने वाले जीव आते हैं । चींटी से लेकर हाथी तक, मच्छर से लेकर बडे बडे मगरमच्छ तक सभी जीवों का समावेश होता है । चलिये ऐसे जीवों को जानकर उन्हें भी अभयदान देने का प्रयास करें कारण कि **अभयदान सभी दानों का राजा है ।**

अभयदान देनेवाला उसका पालन करनेवाला स्वय पूज्य बनता है, अनेको को पूज्य बनाता है ।

स्वइच्छा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकें ऐसे चलने-फिरने वाले जीवों को त्रस जीव कहा जाता है । ये त्रसजीव चार प्रकार के हैं -

१) द्विइन्द्रिय जीव - स्पर्शेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय इन दो इन्द्रिय वाले जीवों का इनमें समावेश होता है ।

२) तेइन्द्रिय जीव - स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय ये तीन इंद्रिय वाले जीवों का समावेश होता है ।

३) चउरिन्द्रिय जीव - स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय तथा चक्षुरिन्द्रिय वाले जीवों का समावेश इनमें होता है ।

४) पंचेन्द्रिय जीव - स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय तथा श्रोतेन्द्रियवाले जीवों का इनमें समावेश होता है ।

''शंख कवड्डय गंडुल जलोय,
चंदणग अलस लहगाई ।
मेहरी किमि पूअरगा,
बेइन्दिय माइवाहाई ।।१५।।

गाथार्थ :- शंख, कोडी, गंडूल, जलोय, चंदनक, अलसिया, लारिया जीव (बासी रोटी वगैरह में उत्पन्न होने वाले जीव) मेर (लकडी के कीडे) कृमि, पोरा, चुडेल वगैरह व्दिइंद्रिय जीव जानना ।

जीव विचार सीख कर जीवों की जयणा पालने की है । चुल्हे पर पकाई गई किसी भी नरम चीज में रात व्यतीत होते ही व्दिइंद्रिय लारिया जीव उत्पन्न होते हैं । अपने नित्य जीवन में इस प्रकार की जीव विराधना टालनी है याने उसका त्याग करना ही योग्य है ।

इसी प्रकार '' चलित रस'' हुई प्रत्येक वस्तु भी अभक्ष्य है । उसमें भी द्विइंद्रिय जीव उत्पन्न होते हैं । ''चलित रस'' याने जिस खाद्य पदार्थ के स्वाद में फर्क हो गया हो वह अथवा जिनके वर्ण गंध रस और स्पर्श बदल गये हों वह । घर में बनाये हुये नास्ते की कडक खाद्य सामग्री में भी बास आते, स्वाद बदल जाने पर व्दिइंद्रिय जीव उत्पन्न होते हैं, इससे पहले ही वस्तु वापर लेना चाहिये । जयणा को जीवन मंत्र बनाना

चाहिये।

इसी प्रकार ''बोड अचार'' याने धूप में बराबर न सुखाये हुये तथा जिसके उपर चार अंगुल तेल न हो ऐसे अचार में भी द्विइंद्रिय जीवों की उत्पत्ती होती है। इससे वे भी अभक्ष्य बनते है।

जैन दर्शन में थाली धोकर पीने का रीवाज है। उसके पीछे भी जीवदया का रहस्य छुपा हुआ है। कोई भी आहार पानी जिन्हें हमने झुठे किये हो उनमें अडतालीस मिनिट के पश्चात लार के जीव (लारिया) उत्पन्न होते हैं, ये जीव भी द्विइंद्रिय जीव हैं। ऐसे अनेक जीवों की हिंसा का पाप हमें लगता है। इससे बचने के लिय भोजन, एकासना आयंबिल वगैरह अडतालीस मिनिट में कर लेना चाहिये तथा थाली में कुछ भी झुठा नहीं छोडना चाहिये, जिससे जयणा का पालन हो सके।

कच्चा दूध, दही या छास के साथ कठोल (द्विदलीय अनाज, मेथी, मटर वगैरह) मिलने पर विदल होता है। उसमें भी द्विइंद्रिय जीव उत्पन्न होते हैं। धर्म के जानकार श्रावक - श्राविकाओं ने विदल न हो इसकी कालजी (सावधानी) रखनी चाहिये।

कढ़ी बनाते समय या ढोकले वगैरह का खमीर डालने से पहले छास, दही को बराबर गरम करना जरुरी है। अपने नित्य-रोजिन्दा व्यवहार में कच्ची छास दही का उपयोग न हो उसकी कालजी रखनी चाहिये, इसके लिये नीचे की बातें ध्यान में रखे -

१. खिचडी और कच्ची छास न खायें।

२. मेथी के पत्ते वाले थेपले-रोटी के साथ कच्ची छास, दही नहीं वापरना।

३. दाल-भात में कच्चा दही नहीं डालना।

४. दही बराबर गरम करे बगैर दही-वडे नहीं बनाना।

५. श्रीखंड के भोजन में किसी भी कठोल का कहीं भी उपयोग न करना।

व्दिइंद्रिय जीवों की विस्तार से विचारणा के पश्चात अब हम तेइंद्रिय जीवों की विचारणा करेंगे।

गोमी, मंकड, जूआ,
पिपीली उद्देहिया य मक्कोडा।
इल्लिय घय मिल्लीओ
सावय गोकीड जाइओ ।।१६।।
गद्दहय चोरकीडा
गोयम कीडाय धन्नकीडाय।
कुंथु गोवालिय इलिया,
तेइंदिय इंद गोवाई ।।१७।।

गाथार्थ :- कानखजूरा, खटमल, जूं,चींटीयां, उधई, चींटे, अनाज की इल्ली,घीमेल (घी में होने वाली इल्ली) सावा (बालों में होने वाला), गोकीटक अथवा चिच्चडी, उतिंगा, विष्टा के कीडे, गोबर के कीडे, अनाज के कीडे, कंथुआ, गोपालक, इल्लियां, इन्द्रगोप आदि तेइंद्रिय जीव हैं।

जीव-विचार का अभ्यास करने पर हमें यह ख्याल आये कि छोटे दिखने वाले खटमल, चींटी और कुंथुआ वगैरह भी तेइंद्रिय जीव हैं। इनमें भी हमारे जैसा आत्मा है, सुख और दुःख की लागणी है, हमारी तरह ही सुख की इच्छा रखते हैं। दुःख से दूर होने का प्रयत्न करते हैं। इन सभी को सुख देने से हमें सुख मिलता हैं, दुःख देने से दुःख मिलता है। नींव का ज्ञान मिलने पर श्रावक-श्राविका का प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि ऐसे जीवों की उत्पति ही न हो इसके लिये सावधानी रखना चाहिये कारण की इन जीवों की उत्पति होने के पश्चात जयणा का पालन मुश्किल हो जाता है। ऐसे जीवों की उत्पति न हो इसके लिये स्वच्छता अनिवार्य हो जाती है।

विशाल बंगला बनाने के पश्चात स्वच्छता न रखें, योग्य कालजी न रखें तो कानखजुरे वगैर जीवों की उत्पति की संभावना रहती है।

फर्निचर बसाने के पश्चात अगर साफ सफाई न रखें तो उसमें खटमल उधई की उत्पति की संभावना बनी रहती हैं।

बालों का योग्य जतन न करने पर उसमें जूं वगैरह होने की शक्यता को नकारा नहीं जा सकता।

अनाज का संग्रह करने के पश्चात जो सावधानी न रखने में आये तो उसमें इल्लीयां, कीडे, वगैरह होते हैं।

घी को बराबर तपाकर न रखने में आये, योग्य समय में उसका उपयोग न किया जाय तो उसमें भी उसी के रंग की बारिक इल्लीयां उत्पन्न हो जाती हैं।

शास्त्रकारों ने ठंडी के सिवाय मेथी, कोथमीर वगैरह अभक्ष्य कहे हैं, फिर भी खाने की लालसा हमें उनके पत्ते सुखाकर गर्मी वगैरह में वापरने की प्रेरणाकरती है। पर इन मेथी, वगैरह के सुखाये पत्तो में छोटे छोटे सूक्ष्म कुंथुआ जीवों का निर्माण होता है। इससे ऐसे सुखाये पत्तों को भी हमें त्याग करना पडेगा।

इस प्रकार प्रतिदिन के जीवन में होती जीव विराधना को समझ कर उससे पीछे हटने के लिये उद्यमशील बनना चाहिये। ऐसी जीवोत्पत्ति ही न हो इसके लिये प्रयास करना चाहिये। कदाचित जीवोत्पत्ति हो ही जाय तो खूब सावधानी पूर्वक ज्यादा से ज्यादा जीवों को अभयदान मिले इस हेतु से योग्य प्रवृत्ति उपाय करना चाहिये, इन जीवों का नाश हो ऐसे जंतुनाशक का उपयोग श्रावक के घर में होना ही नहीं चाहिये। जंतुनाशक का उपयोग हमारी आत्मा को कठोर बनाता है। करुणा का घात करता है। पाप के ढेर को बढा कर दुःख और दुर्गति की और ले जाता है।

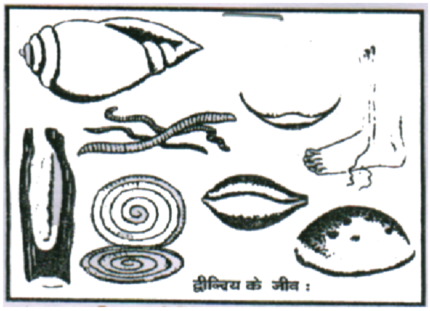

द्वीन्द्रिय जाति के जीव

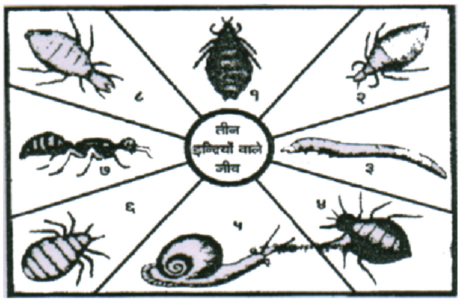

त्रीन्द्रिय जाति के जीव

नव - तत्व.... (अजीव तत्व चालू तथा पुण्यतत्व)

जीव-अजीव तत्व को संक्षेप में जाना...

अब षडद्रव्य को जानेंगें तेवीस मार्गणा के द्वारा और फिर प्रवेश करेंगे पुण्य तत्व में -

''परिणामी जीवमुतं,

सपअेसा अेगरिवत्त किरिआ य ।

णिच्चं कारण कत्ता

सव्वगय मियर अप्पवेसे ।।१४।।

परिणामीपना, जीवपना, रुपीपना, सप्रदेशीपना, एकपना, क्षेत्रपना, क्रियापना, नित्यपना, कारणपना, कर्तापना, सर्वव्यापीपना और अन्य में अप्रवेशीपना विचारना ।

छः द्रव्यों की तेवीस (२३) द्वारों से विचारणा -

१. परिणामी : जिसका परिवर्तन हो । अवस्था बदल जाये वो परिणामी । जीव मनुष्य में से तिर्थंच, देव, नारकी बने ४ गति में भ्रमण करे इससे परिणामी है । पुद्गल में भी अवस्था बदलती है । दूध, दही, घी वगैरह हो इससे पुद्गल भी परिणामी है ।

२.अपरिणामी : धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल इनमें परिवर्तन नहीं आने की वजह से अपरिणामी हैं ।

३.जीव : जिसमें जीव हो वह जीव उदा. जीवास्तिकाय ।

४. अजीव : जिसमें जीव नहीं वह अजीव । उदा. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय और काल ।

५. रुपी (मूर्त) : जिसमें वर्ण,गंध, रस, स्पर्श हैं वो रुपी (मूर्त) है । उदा. पुद्गलास्तिकाय ।

६. अरुपी (अमूर्त) : जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श नहीं वो अरुपी अमूर्त हैं । उदा. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल ।

७. सप्रदेशी : प्रदेशों सहित वो सप्रदेशी उदा. जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ।

८. अप्रदेशी : प्रदेश सहित वह अप्रदेशी उदा. काल

द्रव्य	परिणाम	जीव	मूर्तरूपि	सप्रदेश	एक अनेक	क्षेत्री-क्षेत्र	सक्रिय	नित्य	कारण	कर्ता	सर्वगत-देशगत	अ प्रवेशी
धर्मास्तिकाय	०	०	०	१	१	क्षेत्री	०	१	१	०	दे.	१
अधर्मास्तिकाय	०	०	०	१	१	''	०	१	१	०	दे.	१
आकाशास्तिकाय	०	०	०	१	१	क्षेत्र	०	१	१	०	स.	१
पुद्गलास्तिकाय	१	०	१	१	अनंत	क्षेत्री	१	०	१	०	दे.	१
जीवास्तिकाय	१	१	०	१	अनंत	क्षेत्री	१	०	०	१	दे.	१
काल	०	०	०	०	अनंत	क्षेत्री	०	१	१	०	दे.	१

९. एक : जो द्रव्य संख्या में एक ही अकेला है । उदा. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय ।

१०. अनेक : जो द्रव्य अनेक होते हैं । उदा. जीवास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय और काल ।

११. क्षेत्र : जो रखे वह रखने वाला क्षेत्र कहलाता है । उदा. आकाशास्तिकाय ।

१२. क्षेत्री : क्षेत्र में रहने वाला क्षेत्री है । उदा. जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय और काल ।

१३. सक्रिय : जो गति करने में शक्तिमान हैं वो सक्रिय । उदा. जीवास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय ।

१४. अक्रिय : जो गति करने में असमर्थ हैं वो अक्रिय । उदा. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ।

१५. नित्य (शाश्वत) : जो सदा एक समान रहे

जिसमें परिवर्तन न हो वो नित्य कहलाता है । उदा. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल ।

१६. अनित्य (अशाश्वत) : जो सदा एक समान न रहे, जिसमें परिवर्तन हो वह अनित्य कहलाता है । उदा. जीवास्तिकाय और पुद्‌गलास्तिकाय ।

१७. कारण : जो दूसरों को सहायभूत बने वो कारण । उदा. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय और काल ।

१८. अकारण : जो दूसरों को सहायभूत न बने वो अकारण । उदा. जीवास्तिकाय ।

१९. कर्ता : जो कार्य करने में स्वतंत्र हो वह कर्ता । उदा. जीवास्तिकाय ।

२०. अकर्ता : जो स्वतंत्र कार्य करने वाले नहीं वो अकर्ता है । उदा. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय, काल ।

२१. सर्वगत : सर्वगत याने सर्वव्यापक । उदा. आकाशास्तिकाय ।

२२. देशगत : सर्व व्यापक न हो वह देशगत । उदा. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल ।

२३. परस्पर अप्रवेशी : एक दूसरे द्रव्य में जो प्रवेश न कर सके वो परस्पर अप्रवेशी । उदा. जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय ।

पुण्य - तत्व

एक जीव अल्प प्रयास से सुख पाता है....
सहजता से उसका भाग्य खुल जाता है...
मन में इच्छा हो और वस्तु सामने आ जाये...
रुप हो या स्वास्थ.... सत्ता हो या संपत्ति... उसी की जीत...
चाहे जितने उलटे पासे डाले सभी सीधे ही पडें....
ये सभी करामात है, पुण्यकर्म की.... पुण्यतत्व की... शुभकर्म की

चलीये ! ऐसा पुण्य किस तरह बंधता है और किस तरह भोगा जाता है इसकी सुंदरतम विचारणा आज हमें करनी है ।

जो कुछ भी अच्छा है...अनुकुल है... वो शुभकर्म की देन है वो पुण्य है ।

पुण्य सुंदरता से समझ जायें तो पाप के चक्कर अटक जायें । पुण्य के फेरे फिरने में कहीं कोई आपत्ति आती नहीं । पुण्य से पुण्य की वृद्धि करके मिले हुए मानव भव को सफल बना दें ।

''साउच्च गोअ मणुदुग,
सुर दुग पंचिदिजाई पण देहा ।
आइति तणुणुवंगा
आइम संघयण संठाणा ।। १५।।''

शातावेदनीय, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक, देवद्विक, पंचेद्रिय जाति, पांच शरीर पहेला त्रण शरीर के उपांग, प्रथम संघयण और प्रथम संस्थान ।

शुभ कर्मो का बंध वह पुण्य है । पुण्य के कारणरुप ४२ शुभ कर्म बंधते है । उनकी यहां गिनती की गई है । इन शुभकर्मो के उदय से अनुकुलता की प्राप्ती होती है जिससे पुण्य भोगा जाता है । ४२ शुभ कर्म निम्र प्रकार के हैं -

१. शातावेदनीय कर्म - सुख अनुभव कराता है ।

२. उच्चगोत्रकर्म - उच्च कुल जाति में जन्म दिलाता है ।

३. मनुष्यगतिनाम कर्म - मनुष्यगति दिलाता है ।

४. मनुष्यानुपूर्वी नामकर्म - मनुष्यगति की तरफ ले जाता है ।

५. देवगति नामकर्म - देवगति दिलाता है ।

६. देवानुपूर्वी नामकर्म - देवगति की तरफ (खींच कर) ले जाता है ।

७. पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म - पाँच इन्द्रिय की जाति दिलाता है ।

८. औदारिक शरीर नामकर्म - औदारिक शरीर दिलाता है ।

९. वैक्रिय शरीर नामकर्म - वैक्रिय शरीर दिलाता है ।

१०. आहारक शरीर नामकर्म - आहारक शरीर दिलाता है ।

११. तेजस शरीर नामकर्म - तेजस शरीर दिलाता है ।

१२. कार्मण शरीर नामकर्म - कार्मण शरीर दिलाता है ।

१३. औदारिक अंगोपांग नामकर्म - औदारिक शरीर में अंगोपांग दिलाता है ।

१४. वैक्रिय अंगोपांग नामकर्म : वैक्रिय शरीर में अंगोपांग दिलाता है ।

१५. आहारक अंगोपांग नामकर्म : आहारक शरीर में अंगोपांग दिलाता है ।

१६. वज्रऋषभ नाराच संहनन नामकर्म : हड्डियों का मजबूत में मजबूत ढांचा दिलाता है ।

१७. समचतुरस्त्र संस्थान नामकर्म : शरीर का उत्तम में उत्तम सर्वश्रेष्ठ आकार दिलाता है ।

''वर्ण चउक्का गुरुलहु,
परघा उसास आय वुज्जोअं ।
सुभ खगई निमिण तसदअ,
सुर नर तिरिआउ तिथ्थयरं ।। १६।।

वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उच्छवास, आतप, उद्योत, शुभविहायोगति निर्माण, त्रस दशक, देव का आयुष्य, मनुष्य का आयुष्य, तिर्थंच का आयुष्य तथा तीर्थंकर पना ।

पहले की गाथाओं में हमने पुण्य तत्व के १७ भेदों का विचार किया इस गाथा में आगे की पुण्य प्रकृतिओं का विचार करेंगे ।

१८. शुभ वर्ण - श्वेत, रक्त और पीत (पीला) ये तीन शुभ वर्ण हैं ।

१९. शुभ गंध - सुगंध अथवा सुरभिगंध शुभ गंध है ।

२०. शुभ रस - आम्ल, मधुर और कषाय रस ये तीन शुभ रस है ।

२१. शुभ स्पर्श - लघु, मृदु, उष्ण, तथा स्निग्ध ये चार शुभ स्पर्श हैं । पुण्य के उदय से शुभ वर्णादि युक्त शरीर की प्राप्ति होती है ।

२२. अगुरु लघु नाम कर्म : जीव को स्वयं का शरीर भारी या हलका न लगने दें ।

२३. पराघात नामकर्म - जीव को ऐसा प्रभावशालीपना दिलाता है कि उसके दर्शन अथवा वाणी मात्र से बलवान मनुष्य भी क्षोभ पा जाये कुछ भी बोल न सके ।

२४. श्वासोश्वास नामकर्म - जीव को सुख पूर्वक श्वास लेने की लब्धि दिलाता है ।

२५. आतप नामकर्म - जीव का शरीर अनुष्ण हो फिर भी उष्ण प्रकाश को देने की शक्ति आतप नामकर्म से प्राप्त होती है ।

२६. उद्योत नामकर्म - जीव का शरीर अनुष्ण हो और शीतल प्रकाश फैलाता है ।

२७. शुभविहायो गति - दूसरों को प्रिय लगे ऐसी सुलक्षणी चाल दिलाता है ।

२८. निर्माण नामकर्म - अंग उपांग और अंगोपांग की नियत स्थान पर रचना इस कर्म से प्राप्त होती है ।

त्रस दशक का विवेचन १७ वीं गाथा में किया गया है ।

२९. देवायु कर्म - स्वयं के शरीर की स्वाभाविक कांति से दीपे वो देव । देवगति के कोई भी एक भव में जन्म से मरण तक टिका कर रखनेवाला कर्म वो देवायु कर्म ।

३०. मनुष्यायु कर्म - वस्तु स्थिति को यथार्थ समझ सके वो मनुष्य । मनुष्य गति के किसी भी एक भव में जन्म से मृत्यु तक टिकाकर रखने वाला कर्म वो मनुष्यायु कर्म ।

३१. तिर्यंचायु कर्म - तिर्च्छा चलें वो तिर्यंच । तिर्यंच गति के किसी एकभव में जन्म से मृत्यु तक टिका कर रखने वाला कर्म वो तिर्यंचायु कर्म ।

३२. तीर्थंकर नामकर्म - इस कर्म के उदय से आठ प्रातिहार्यादि अतिशयो की प्राप्ति होती है, तीनों भवन में

पूज्य बनता है और पूजनीय धर्मतीर्थ प्रवर्ताते हैं।

''तस बायर पज्जतं,
पत्ते अथिरं सुभं च सुभगं च।
सुस्सर आइज्ज जसं
तसाइ दसगं इमं होई।।१७।।

त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सौभाग्य, सुस्वर,आदेय और यश ये त्रस दशक हैं।

३३. त्रस नामकर्म - के उदय से जीव द्विइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय होता है (स्व की इच्छा से हलन चलन करने वाला होता है)

३४. बादर नामकर्म के उदय से जीव बादर याने स्थूल होता है (बहुत, संख्याता, असंख्याता, अनंता मिले हुये भी देख सकते हैं)

३५. पर्याप्त नामकर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियां पूरी करने में समर्थ होता है।

३६. प्रत्येक नामकर्म - के उदय से प्रत्येक (जीववार भिन्न भिन्न) शरीर की प्राप्ति होती है।

३७. स्थिर नामकर्म - के उदय से स्थिर अवयवों की प्राप्ति होती है (उदा. दांत, हड्डीयां वगैरह)।

३८. शुभ नामकर्म - के उदय से नाभि उपर के मस्तकादि शुभ अवयव की प्राप्ति होती है।

३९. सौभाग्य नामकर्म - के उदय से दूसरों के उपर उपकार न किया हो फिर भी सभी को प्रिय लगता है।

४०. सुस्वर नाम कर्म - के उदय से जीव मीठी, मधुर, सुखकर आवाजवाला बनता है।

४१. आदेय नामकर्म के उदय से जीव सभी को मान्य वचन वाला होता है।

४२. यश नामकर्म के उदय से जीव यश और किर्तीवाला होता है।

यह दस कर्म का समुह त्रस दशक कहलाता है। ये दस कर्म शुभ हैं, इसलिये इनका समावेश पुण्यतत्व में होता है। पुण्य तत्व में कुल ४२ शुभ प्रकृतियों का समावेश होता है

पुण्य भोगा जाता है ४२ प्रकार से परंतु बंधता है ९ (नौ) प्रकार से, पुण्य बंध के नौ प्रकार इस तरह हैं -

१. सुयोग्य पात्र में अन्नदान करने से।

२. सुयोग्य पात्र में पान (पानी) दान करने से।

३. सुयोग्य पात्र को स्थान का दान करने से।

४. सुयोग्य पात्र को शयन (सोने के साधन) दान करने से।

५. सुयोग्य पात्र को वस्त्रदान करने से।

६. मन में शुभ विचारणा चिन्तन करने से।

७. वचन से शुभ व्यापार - व्यवहार करने से।

८. काया से शुभ व्यापार - व्यवहार करने से।

९. देव, गुरु, उपकारी, बडों को नमस्कार करने से।

अगर हमें सुख चाहिये तो पुण्य का बंध अति आवश्यक बन जाता है। पुण्य के बंध का प्रारंभ दान से होता है। दान ये धर्म का प्रथम सोपान है। सुखी होना है ? तो तुम्हारी संपत्ति का सदुपयोग करना सीखना पडेगा।

पुण्य से मिल गये मन वचन और काया का शुभ उपयोग करते सीखना ही पडेगा। काया को प्रभुदर्शन, पूजा, दान परोपकार में जोडना पडेगा। वाणी का सदुपयोग कर प्रभुस्तुति, स्तवना भक्ति में उसे जोडना पडेगा। मन के अशुभ को दूर कर शुभ संकल्पमय शुभ चिंतन, मनन, अनुप्रेक्षा में जुड जाना पडेगा। इससे पुण्य के भंडार भरपूर बनेगें।

देव गुरु को नमस्कार कर उनके गुणों की अनुमोदना और ऐसे महान गुणों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना आवश्यक बन जाती है।

पुण्य बंध के नौ के नौ स्थानो को जीवन में स्थान देकर पुण्य कमाने के लिये प्रयत्नशील बनेगें तो वर्तमान आराधनामय और भावि सुखमय बने बगैर नहीं रहेगा, तो प्रारंभ करो पुरुषार्थ... पाओ सिद्धि।

तीर्थंकरो की जीवन यात्रा

(श्री चंद्रप्रभस्वामी भ. से श्री धर्मनाथ भ. तक)

अचलगच्छाधिपति प. पू. आ.भ. श्री गुणसागरसूरि म.सा.

श्री चंद्रप्रभस्वामी

श्री चंद्रप्रभस्वामी भगवान पहले तीसरे भव में धातकी खंड के महाविदेह में पद्म नाम के राजा थे। वहाँ सम्यक्त्व पाकर, दीक्षा लेकर, वीस-स्थानक तप की आराधना से तीर्थंकर नाम कर्म बाँधकर वैजयंत विमान में देव हुये। वहाँ से चंद्रपुरी में महसेन राजा की लक्ष्मणा रानी के गर्भ में फागुन वदि पंचमी के दिन आये। चौदह स्वप्न सूचित मागसर वदि द्वादशी को जन्मे। श्वेतवर्णवाले, चंद्रलंछन वाले और देढ़ सौ धनुष की उंचाई वाले प्रभु ढ़ाई लाख पूर्व कुमार अवस्था में , साडे छः लाख चौवीस पूर्व राजा रहकर, सांवत्सरिक दान देकर मागसर वदि तेरस को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर महा वदि सप्तमी को चंद्रपुरी में केवलज्ञान पाया। अनेक भव्य आत्माओ को तारा, चौवीस पूर्व कम ऐसे एक लाख पूर्व दीक्षा पाली, दस लाख पूर्व का सम्पूर्ण आयुष्य भोगकर समेते शिखरजी के उपर एक हजार मुनिओं के साथ मासिक अनशन कर श्रावण बदि सप्तमी को मोक्ष में गये। इन प्रभु को दत्त आदि ९३ (त्रियानवे) गणधर सहित ढाईलाख साधु, तीन लाख अस्सी हजार साध्वीयां, ढाई लाख श्रावक और चार लाख इक्यानवे हजार श्राविकायें इतना परिवार था। शासन रक्षक विजय यक्ष और भ्रकुटी यक्षिणी थे।

श्रीसुविधिनाथ

श्री सुविधिनाथ प्रभु अगले तीसरे भव में पुष्करद्वीप के महाविदेह में महापद्म राजा थे। वो वहाँ सम्यक्त्व पाकर दीक्षा ग्रहण कर एकावली आदि अनेक तप करके तीर्थंकर नामकर्म बाँध कर वैजयंत विमान में देव हुए। वहाँ से काकंदी नगरी के सुग्रीव राजा की रामारानी के उदर में महा वदि नवमी को आये। चौदह स्वप्न सूचित प्रभु कारतक वदि पंचमी को जन्मे। मगरमच्छ के लांछन वाले श्वेतवर्ण वाले, एक सौ धनुष्य की उंचाई वाले प्रभु पचास हजार पूर्व वर्ष कुमार अवस्था में रहे, पचास हजार पूर्व और अठ्ठावीस पूर्वांग राज्य का पालन कर, सांवत्सरिक दान देकर कारतक वदि षष्ठी को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर, कार्तिक सुदि तीज को प्रभु को केवलज्ञान हुआ। अनेक भव्यात्माओं को तारा। अठ्ठावीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व दीक्षा पालकर, दो लाख पूर्व का सम्पूर्ण आयुष्य भोग कर अंत में सम्मेतशिखर के उपर जा करके हजार मुनिओ के साथ मासिक अनशन कर भाद्रपद सुदि नवमी को प्रभु मोक्ष गये। प्रभु को वराह आदि अठ्ठावीस गणधर सहित दो लाख साधु, वारुणी आदि एक लाख बीस हजार साध्वीयां, दो लाख उन्नतीस हजार श्रावक और चार लाख इकत्तर हजार श्राविकायें इतना परिवार था। शासन रक्षक अजित यक्ष और सुतारका यक्षिणी थे।

श्री शीतलनाथ

श्री शीतलनाथ प्रभु अगले तीसरे भव में पुष्करद्वीप के महाविदेह में पद्मोत्तर राजा थे। वो वहाँ सम्यकत्व पाकर, चारित्र लेकर वीसस्थानक की

आराधना से तीर्थंकर नामकर्म बाँधकर दसवें देवलोक में देव हुये । वहाँ से भद्दिलपुर में द्रढरथ राजा की नंदारानी के उदर में चैत्र वदि षष्ठि को आये । चौदह स्वप्न सूचित प्रभु षोष वदि बारस को जन्मे । श्रीवत्स लांछन वाले, सुवर्णकांति वाले, नब्बे धनुष्य ऊंचाई वाले प्रभु पच्चीस हजार पूर्व वर्ष कुमार अवस्था में रहकर, पचास हजार पूर्व वर्ष राजा के रुप में रहकर सांवत्सरिक दान देकर पोष वदि बारस को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर मार्गशिर्ष वदि चौदस को भद्दिलपुर में केवलज्ञान पाकर अनेक भव्यात्माओं को तारा, पच्चीस हजार पूर्व दीक्षा पालकर एक लाख पूर्व का आयुष्य भोगकर, सम्मेतशिखरजी के उपर एक हजार मुनिओ के साथ मासिक अनशन कर चैत्र वदि दूज को मोक्ष गये । इन प्रभु को नंद आदि इक्यासी गणधरों सहित एक लाख साधु सुयशा आदि एक लाख छः हजार साध्वीयाँ, दो लाख बयासी हजार श्रावक, चार लाख अठ्ठावन हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक ब्रम्ह यक्ष और अशोका यक्षिणी थे ।

श्री श्रेयांसनाथ

श्री श्रेयासंनाथ प्रभु अगले तीसरे भव में पुष्करद्वीप महाविदेह में नलीनगुल्म राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व पाकर दीक्षा लेकर, वीसस्थानक की आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म बाँध सातवें देवलोक में देव हुए । वहाँ से सिंहपुर में विष्णुराजा की विष्णुरानी के उदर में वैशाख वदि षष्ठि को आये । चौदह स्वप्न सूचित महा वदि बारस को जन्में । गेंडे के लांछन वाले, सुवर्ण कांतिवाले, अस्सी धनुष्य ऊँचाई वाले प्रभु इक्कीस लाख वर्ष कुमार अवस्था में रहकर, बयालीस लाख वर्ष राजारुप रह कर, सांवत्सरिक दान देकर, महा वदि तेरस को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर, पोष वदि अमावस्या को केवलज्ञान पाया । फिर अनेक भव्यात्माओं को तारकर, इक्कीस लाख वर्ष दीक्षा पालकर, चौर्यासी लाख वर्ष का संपूर्ण आयुष्य भोगकर अंत में सम्मेतशिखर उपर एक हजार मुनिओं के साथ एक मास का अनशन कर आषाढ वदि त्रीज को मोक्ष में गये । इन प्रभु को गोशुभ आदि छहत्तर गणधरों सहित चौर्याशी हजार साधु, धारिणी आदि एक लाख तीन हजार साध्वीयाँ, दो लाख उन्यासी हजार श्रावक और चार लाख अडतालीस हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक मनुज यक्ष और मानवी यक्षिणी थे । इन प्रभु के शासन में प्रथम अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव, त्रिपृष्ट वासुदेव और अचल बलदेव हुये है ।

श्री वासुपूज्य स्वामी

श्री वासुपूज्य प्रभु अगले तीसरे भव में पुष्करावर्त द्वीप के महाविदेह में पद्मोत्तर राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व पा कर दीक्षा ली वीशस्थानक तप की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म बांध कर दसवें देवलोक में देव हुए । वहाँ से चंपापुरी में वसुपुज्य राजा की जयारानी के उदर में जेठ सुदि नवमी को आये । चौदह स्वप्न सूचित प्रभु माघ वदि चौदस को जन्में । महिष लांछनवाले, रक्तवर्ण (लाल) वाले, सत्तर धनुष्य की ऊँचाईवाले प्रभु अठारह लाख वर्ष कुमार अवस्था में रहकर, माघ वदि अमावस्या के दिन छः सो

राजाओं के साथ दीक्षा ली और चंपापुरी में माघ सुदि दूज को केवलज्ञान पाया । अनेक भव्यात्माओं को तारकर, चउवन्न लाख वर्ष दीक्षा पाल कर, बहत्तर लाख वर्ष का सम्पूर्ण आयुष्य भोग कर, आषाढ सुदि चौदस को छःसौ मुनियों के साथ मासिक अनशन कर चंपापुरी में मोक्ष गये । इन प्रभु को सूक्ष्म आदि छासठ गणधरों सहित बहत्तर हजार साधु, एक लाख साध्वीयाँ दो लाख पंद्रह हजार श्रावक और चार लाख छत्तीस हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक कुमार यक्ष और चंडादेवी यक्षिणी थे । इन प्रभु के शासन में दूसरे प्रतिवासुदेव तारक, वासुदेव व्दिपुष्ट और विजय बलदेव हुए ।

श्री विमलनाथ

श्री विमलनाथ प्रभु अगले तीसरे भव में धातकी खंड़ महाविदेह में पद्मसेन राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व पाकर दीक्षा ली । वीसस्थानक की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म बांधकर आठवें देवलोक में देव हुए । वहाँ से कांपिल्यपुर में कृतवर्मा राजा की श्यामारानी के उदर में वैशाख सुदि बारस को आये । चौदह स्वप्न सूचित प्रभु माघ सुदि तीज को जन्में सूअर लांछनवाले, सुवर्णकांति वाले, साठ धनुष्य की ऊँचाई वाले प्रभु पंद्रह लाख वर्ष कुमारावस्था, तीसलाख वर्ष राजारुप रहकर, सांवत्सरिक दान देकर माघ सुदि चौथ को एक हजार राजाओं वे साथ दीक्षा ली, दो वर्ष छद्मस्थ रहे, पोष सुदि षष्ठि को कांपिल्यपुरी में केवलज्ञान पाया । अनेक भव्यात्माओं को तारकर, पंद्रह लाख वर्ष दीक्षा पाली, साठ लाख वर्ष का आयुष्य भोगकर अंत में सम्मेत शिखरजी उपर छः हजार राजाओं के साथ एक मास का अनशन कर जेठ वदि सातम को मोक्ष गये । प्रभु को मंदर वगैरह सत्तावन गणधरों सहित अडसठ हजार साधु, एक लाख आठसो साध्वीयां , दो लाख और आठ हजार श्रावक तथा चार लाख चौत्तीस हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक षण्मुख यक्ष और विदिता यक्षिणी थे । इनके शासन में तीसरे मेरक नाम के प्रतिवासुदेव, स्वयंभू वासुदेव और भद्र नाम के बलदेव हुए ।

श्री अनंतनाथ

श्री अनंतनाथ प्रभु अगले तीसरे भव में धातकी खंड महाविदेह में पद्मरथ राजा थे । वहां सम्यक्त्व पाये और दीक्षा लेकर बीसस्थानक की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म बांधकर दसवें देवलोक में देव हुए, वहाँ से अयोध्यापुरी में सिंहसेन राजा की सुयशारानी के उदर में आषाढ वदि सप्तमी को आये । चौदह स्वप्न सूचित प्रभु चैत्र वदि तेरस को जन्में । सिंचाणा (   ) के लांछनवाले सुवर्ण वर्ण वाले, पचास धनुष्य ऊँचाई वाले प्रभु साडे सात लाख वर्ष कुमारावस्था, पंद्रहलाख वर्ष राजारुप रहकर, सांवत्सरिक दान देकर चैत्र वदि चौदस को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर, तीन वर्ष छदमस्थ रहकर, चैत्र वदि चौदस को अयोध्या में केवलज्ञान पाकर अनेक भव्यात्माओं को तारकर साडे सात लाख वर्ष चारित्र पाल कर, तीस लाख वर्ष का संपूर्ण आयुष्य भोगकर अंत में सम्मेतशिखर के उपर सात हजार मुनिओं के साथ मासिक अनशन कर चैत्र सुदि पंचमी को मोक्ष पधारे । प्रभु के यश आदि पचास गणधरो सहित छासठ हजार साधु, बासठ हजार साध्वीयाँ, दो लाख छः हजार श्रावक और चार लाख चौदह हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक पाताल यक्ष और अंकुशा यक्षिणी थे । प्रभु के शासन में चौथे मधु नाम के प्रतिवासुदेव, पुरुषोत्तम वासुदेव और सुप्रभ बलदेव हुए है ।

श्री धर्मनाथ

श्री धर्मनाथ प्रभु अगले तीसरे भव में जंबु महाविदेह में दृढरथ राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व पाकर दीक्षा लेकर वीशस्थानक की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म बाँधकर वैजयंत विमान में देव हुए । वहाँ से रत्नपुरी में भानुराजा की सुव्रतारानी के उदर में वैशाख सुदि सप्तमी को आये । चौदह स्वप्न सूचित प्रभु माघ सुदि तीज को जन्मे, वज्रलांछन वाले, सुवर्ण वर्ण वाले, पैंतालीस धनुष्य की ऊँचाई वाले प्रभु ढाई लाख वर्ष कुमारावस्था में रहकर, पांच लाख वर्ष राजारुप रहकर, सांवत्सरिक दान देकर माघ सुदि त्रयोदशी को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर, दो वर्ष छद्मस्थ रहकर पोष सुदि पूनम को केवलज्ञान पाया । अनेक जीवों को तारकर ढाइ लाख वर्ष दीक्षा पालकर दस लाख वर्ष का संपूर्ण आयुष्य भोगकर, अंत में सम्मेतशिखरजी के उपर एक सौ आठ मुनियों के साथ मासिक अनशन करके जेष्ठ सुदि पंचमी के दिन मोक्ष में गये । इन प्रभु को अरिष्ट आदि तैतालीस गणधरों सहित चौसठ हजार साधु, शिवा आदि बासठ हजार चारसो साध्वीयाँ , दो लाख चालीस हजार श्रावक और चार लाख तेरह हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक किन्नर यक्ष और पन्नगा यक्षिणी थे । प्रभु के शासन में पाँचवे निशुंभ प्रतिवासुदेव, पुरुषसिंह वासुदेव, और सुदर्शन बलदेव तथा तीसरे मघवा तथा चौथे सनतकुमार ये दो चक्रवर्ती हुए हैं ।